ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

हिंदी की महिला आत्मकथाओं में चित्रित स्त्री जीवन

डॉ. झेलम झेंडे सहाय्यक प्राध्यापिका, विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग वीर वाजेकर महाविद्यालय, फुंडे,ता.उरण, जि.रायगड (नवी मुंबई) (मुंबई विद्यापीठ,मुंबई)

भूमिका :

मानव, समाज, समाज जीवन, सामाजिक परिवेश, परिवर्तित समाज, सामाजिक मूल्य और युगबोध का अंकन करने वाला हिन्दी साहित्य रहा है। सजग साहित्यकार समकालीन परिस्थितियों अभिलाषाओं आदि का चित्रण करने में सक्षम होता है। अतः साहित्यकार सच्चाई की ओर बढ़ता है। फलस्वरूप 'परिवर्तनशीलता' साहित्य की विशेषता रही है। मानव चेतना जन जागृति साहित्य की आत्मा है। साहित्य का केन्द्र बिन्दु में मानव, मूल में मानव, परिधि में मानव ही है। अतः उसकी ही कथा मानव कथा, आत्मकथा है। 'आत्मकथा में आत्म-तत्त्व सर्वोपरि होता है। यों तो गद्य-पद्य की सभी विधाओं में यह तत्त्व अन्तर्धाज्ञ के रूप में बसा रहता है। लेकिन गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय होती जाती विधा आत्मकथा का तो सारा दारोमदार इसी पर टिका रहता है। जितना सच होगा उसकी आत्मकथा उतनी ही श्रेष्ठ होती है। हिन्दी आत्मकथा साहित्य का विकास तो प्रायः भारतेन्दु युग से ही होता है, किन्तु आत्मकथा का उद्भव इस काल से बहुत पहले रीतिकाल में भी हो चुका था।

हिन्दी आत्मकथा साहित्य की प्रथम कृति के रूप में 'बनारसी दास जैन' कृत 'अर्द्धकथानक' सन् 1941 ई. में लिखी गई। प्रमुख महिला आत्मकथाकारों में कुसुम अंसल, मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, कृष्णा अग्निहोत्री, सुशीला टाकभौरे आदि की प्रमुख आत्मकथाओं में स्त्री जीवन के यथार्थ का विवेचन किया जायेगा। जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक यथार्थ का आंकलन किया जाएगा।

बीज शब्द :

आत्मकथा, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षा, बालविवाह

मुल आलेख:

कुसुम अंसल की आत्मकथा 'जो कहा नहीं गया' में सामाजिक जीवन का वर्णन किया है। जिसमें कुसुम अंसल जी का जन्म एक प्रतिष्ठित खानदान में हुआ था। उनके दादा जी बैरिस्टर थे और चार साल लंदन में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। उनके पिता जी खूब पढ़े लिखे थे। साहित्य और कला में उनका बहुत गहरा सम्बन्ध था। कुसुम अंसल को अपने खानदान की मर्यादा और पिता जी की प्रतिष्ठा के कारण हमेशा आदर मिलता रहा था। मगर वह कई बार उनके समाज में अपनी एक पहचान स्थापित करने में एक बाधा बन गया था। इसके बारे में बताते हुए लेखिका एक घटना का वर्णन करती है- " लेखन तो मेरा एक स्वप्न था, विराट स्वप्न जिसमें मैं सशरीर चल ही नहीं रही थी पूरा रम गई थी। एक बार मैं 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' में साप्ताहिक के लिए अपनी एक कहानी लेकर आई थी। वहाँ के एक सम्पादक ने अविश्वास में कहानी पर लिखे मेरे नाम को और मुझे देखा, खिड़की के बाहर खड़े 'अंसल भवन' पर दृष्टि डाली, फिर हंसकर कहा-इस सेठानी को क्या आवश्यकता पड़ी थी लेखिका बनने की, इन्हें शायद पता नहीं है ये शौक की चीज़ नहीं जोखम का काम है..... ।"[१] भारतीय समाज में स्त्री का चित्रण इस प्रकार किया ह कि उसके जीवन का सूत्र आँखों में पानी और आँचल में दूध है। पुरुष निर्मित नियमों, रूढ़ियों से विचलन करने वाली स्त्री बदचलन कहलाई परन्तु आज तक क्रांतिकारी कहलाती है-"उपेक्षा, अज्ञातवास एवं दमन की मार इतनी गहरी होती है कि स्त्री अपनी पहचान, अधिकार और निजी सत्ता भी भूल गई या भुला दी गई। सामाजिक, साहित्यिक इतिहास ने स्त्री को खदेड़ दिया यही वजह है कि इतिहास ग्रंथों में स्त्री की सृजनात्मक एवं संघर्षशील इमेज का उल्लेख तक नहीं मिलता।"[२] विवाह के बारे में सोचने का मन तो परिपक्व होने से पहले ही लेखिका की शादी तय हो गई। विवाह के प्रति कुसुम जी की प्रतिक्रिया कुछ ऐसी थी-"मैंने तो विवाह चाहा नहीं था अपने आसपास विवाह के अनेक रूप

Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

थे जिन्हें मैं अब तक गहराई से जानने-पहचानने लग गई थी और उसे पहचान की प्रतिक्रिया स्वरूप विवाह के नाम से मन में कोई अनुगूँज कोई सुख संवाद नहीं उपजता था।"[३]

कुसुम अंसल जी धर्म और संस्कृति को अपनी जिन्दगी में बहुत महत्त्व देती हैं। धर्म क्या है जैसा प्रश्न जब उनके मन में उठता तो तुरंत उसके लिए उनको ऐसा समाधान भी मिलता था। मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी का बचपन से ही यह विचार था कि समाज और परिवार अलग नहीं है। ज्यादातर गाँवों के लोग आपस में ऐसे ही रहते हैं जो एक दूसरे का दुःख और सुख आपस में बाँटते थे। बाद में जब मन्नू जी शहरों के फ्लैटों में रहने लगी तब उनको लगने लगा कि महानगरों की ज़िन्दगी ने हमें अपने परम्परागत 'पड़ोस कल्चर' से विच्छिन्न करके कितना असुरक्षित और संकुचित बना दिया है। महानगरी जीवन और आसपास के बारे में वह कहती है- "आज तो मुझे बड़ी शिद्दत के साथ यह महसूस होता है कि अपनी ज़िन्दगी खुद जाने के इस आधुनिक दबाव ने महानगरों के फ्लैट में रहने वालों को हमारे इस परम्परागत 'पड़ोस कल्चर' से विच्छिन्न करके हमें कितना संकुचित, असहाय और असुरक्षित बना दिया है।"[४] माखाड़ी समाज को परम्परानिष्ठ समाज माना जाता है। वहाँ बाल-विवाह, सती प्रथा, अनेक प्रथाओं के अनुगामी थे। मारवाड़ी समाज के लोग इस समाज का सुधार कार्य के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करती है- मेरे कलकत्ता जाने से काफ़ी पहले से श्री भँवरलाल जी सिंधी के नेतृत्व से मारवाड़ियों के बीच समाज सुधार का एक बड़ा क्रांतिकारी आन्दोलन शुरू हुआ था। जिसमें सुशीला काफ़ी ख्याति अर्जित कर चुकी थी। अत्यंत संकटदायक आर्थिक स्थिति में राजेन्द्र ने अपने सबसे छोटे भाई हेमेन्द्र को सहयोग के लिए बुलाया और कुसुम की मृत्यु हो जाने से सबसे छोटी बहन नन्हीं को हॉस्टल से घर लाना पड़ा। इस आर्थिक स्थिति को लेखिका इस प्रकार व्यक्त करती है- "राजेन्द्र अक्षर से निकालकर घर-खर्च के लिए मुझे थोड़ा-बहुत देते थे पर दिल्ली में पाँच प्राणियों के परिवार को चलाने की सारी जिम्मेवारी तो मेरे ऊपर ही थी। मैं भी करती तो आखिर क्या करती।"[५]

प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में लिखती है कि हमारे भारतीय समाज में लोग नारी का आदर तभी करते हैं जब उनके पीछे एक पति का नाम जुड़ा हुआ होता है। चाहे नारी सधवा हो या विधवा समाज में उसकी पहचान उसके पति के नाम से ही होती है। अपने यथार्थ चित्रण को दर्शाया- "मारवाड़ी के घर में जिस दिन से बेटी जन्म लेती है, उसी दिन से माँ अपने खुद के दहेज में मिली हुई बहुमूल्य चीजें टीचर के थान, सच्चे जरदोज की साड़ियाँ, घाघरे, ओढ़नी, चाँदी के बर्तन, गहने सब अलग-अलग रखने लगती है।"[६] प्रभा खेतान अन्य औरतों की भाँति अपनी जिन्दगी को भी रो-रोकर बिताना नहीं चाहती थी। समाज की आँखों में तो नारी सिर्फ़ रोने के लिए पैदा हुई एक वस्तु है। लेखिका अपनी अम्मा, भाभी, ताई, चाचियाँ आदि के जैसे बनना नहीं चाहती जो सिर्फ़ रोने के लिए जन्म लिए थे। लेखिका अपना आक्रोश इस प्रकार प्रकट करती है- "क्या एक बूँद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्मांड समा जाएगा? क्योंकि किसलिए रोना और केवल आँसुओं का समन्दर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहे तुम?"[७]

लेखिका की सबसे अच्छी और विश्वसनीय सहेली शान्ता, प्रभा जी को समझते हुए कहती है कि भारतीय समाज में ऐसे रिश्ते को कानून के विरुद्ध ही मानते हैं। वह लेखिका को समझाते हुए कहती है- "भारतीय संविधान की धारा..... के तहत एडल्टी इज़ ए क्राइम, यह एक नाज़ायज सम्बन्ध है। उसकी पत्नी यदि पुलिस को खबर कर दे तो तुम और तुम्हारे वे डॉक्टर साहब चौबीस घण्टे के लिए हवालात में बंद कर दिए जाएंगे।"[८] कोई भी नारी स्वतन्त्र रूप में सफल नहीं हो सकती। उसकी सफलता परिवार और समाज से जुड़ी हुई है। समाज सिर्फ उन औरतों को सम्मान देता है जो सती सावित्री और पारम्परिक मूल्यों को मानकर परिवार को चलाती हैं। वे कहती हैं- "सती सावित्री, पतिव्रताएँ परम्परा को मानकर चलने वाली, अपने आपको पति के चरणों में रखने वाली कमोवेश इन सभी स्त्रियों के मूल्य एक जैसे थे, उनकी ताकत का स्त्रोत उनके पति थे।"[९] चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' बहुत महत्त्वपूर्ण आत्मकथा है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा को तीव्र बुद्धि और ग्रहण-शक्ति के कारण वह अध्यापिकाओं की प्रशंसा की पात्र बन गई और यही कारण था सहपाठियों की ईर्ष्या का पात्र बनने का भी। प्रार्थना के समय भी वहीं बड़ी लड़कियों से भी ज्यादा स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण करती थी और स्कूल के सभी गुरुजनों की प्रिय छात्रा बन गई। स्कूल के जीव के संदर्भ में वह कहती है- "जिस भी दिन, किसी भी कक्षा में, प्रार्थना के नेतृत्व की समस्या आती, में ही मंच पर आकर प्रार्थना को सम्पन्न करती थी। पूरी पाठशाला में इस तरह शिक्षक

Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

वर्ग में मुझे प्रशंसा और लोकप्रियता दोनों मिली, पर अन्य छात्राओं की ईर्ष्या और क्रोध का भाजन भी मैं ही बनती थी।"[१०] लेखिका आठवीं कक्षा में पढ़ती थी। उनकी माँ अक्स्मात् बीमार पड़ गई। जिसके कारण लेखिका का स्कूल जाना बंद हो गया। दीदी की शादी होने के कारण घर में एकमात्र स्त्री थी जिससे अपनी माँ की देखभाल करती थी। जिससे वह अपनी जिम्मेदारी समझकर पूर्ण मन से करती रही। लेकिन उनको सिर्फ इस बात का दुःख था क्योंकि उनकी पाया रखा। लेखिका ने अपनी ज़िन्दगी में अनेक मुसीबतों का सामना किया। आर्थिक रूप से पारिवारिक समस्याओं व अन्य कारणों से परेशान होती थी। परन्तु अपने बच्चों की सफलता को देखकर वे बुरे दिनों को भूल जाती थी। उनका जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण था। बच्चे को सफलता के प्रति कहती है- "भगवान की कृपा से, मेरी सन्तानें अपने देश की स्थिति के अनुसार सम्पन्न है, अपनी शिक्षा, श्रम व सद्बुद्धि के कारण ही वे वहाँ पहुँची थी। ब्लैक मार्केट, शार्टकट या घटिया सिफारिश के बल पर नहीं। सकर्त्तव्यनिष्ठ है, माता-पिता का वृद्धावस्था में पूरा ध्यान रखते हैं। एक माँ को और क्या चाहिए।"[११]

लेखिका के दादा जी एक आर्य समाजी और सुधारवादी चिंतक थे। उस समय बाल-विवाह प्रथा ज्यादा प्रचलित थी। परन्तु दादी जी इस कुप्रथा के शिकार हुए थे। जब उनकी पहली पत्नी की मुत्यु हो गई तब उनकी शादी एक पंद्रह वर्षीय कन्या से हुई। आठवीं में पढ़ते हुए अपने बेटे की शादी भी उन्होंने तेरह वर्ष की एक सुन्दर कन्या से कर दी। इसके बारे में लेखिका लिखती है- "समय के साथ घाव भी भरने लगता था सो हालात को देखते हुए, उन्होंने मुलतान के एक बहुत ही निर्धन परिवार की पंद्रह वर्षीय कन्या जो उस समय के लिए, ब्याह की दृष्टि से बहुत बड़ी उम्र की थी ब्याह कर दिया। एक मित्र की अति सुंदरी बारह वर्षीय कन्या उन्हें इतनी भायी कि अपने आठवीं में पढ़ते बेटे के साथ उन्होंने उसका विवाह कर दिया। इस सामाजिक कुरीति से गणेश लाल ने अपने ब्याह में और न बेटे के ब्याह में ऊपर उठ पाए। आर्य समाज का सुधार यहाँ वे निभा सके।"[१२]

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' में लेखिका की दोस्ती में न जाति या न धर्म का भेद था। अपने घरवालों, मुख्य रूप से अपनी माँ के विरोध के बाद वे अन्य धर्म के लोगों से गहरी मित्रता निभाती थी। एक मुसलमान परिवार के साथ अपनी मैत्री भावना को इस प्रकार स्पष्ट करती है- "अहमद परिवार से गहरा अपनापन जुड़ा। दोनों परिवारों की स्त्रियाँ बुरका पहनकर ही हमारे घर आती थी। बस जैसे ही बुरका हटता-झिलमिल करता उनका श्रृंगार और सौंदर्य कमरे को रोशन कर देता बहुत प्यार दिया मेरी इन दोस्तों ने। अम्मा तो इनके घर का पानी तक नहीं पीती थी। परन्तु फल वगैरह खा लेती। अहमद परिवार तो बहुत लम्बे अरसे तक यहाँ रहा और आज तक उनके शेश सदस्यों से मेरी दोस्ती बरकरार है।"[१३]

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था के चलते जिन जाति वर्गों का सामाजिक और आर्थिक रूप से समाज में पतन और दमन किया गया, वहीं दलित लोग कहे जा सके। दलित शब्द की अवधारणा को स्पष्ट किया- "दलित वह व्यक्ति है, जो विशिष्ट सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसके अधिकारों को छीना गया। मात्र जन्म के आधार पर जिनको समाज में एक ही प्रकार का जीवन मिला है। मनुष्य के रूप में अनेक मूल्यों को नकारा गया है। मानव के रूप में जिनके अधिकारों को ठुकराया गया है।"[१४] लेखिका ने आत्मकथा के अंत में सामाजिक जागृति का आह्वान किया है। उनमें समता, करुणा तथा मैत्री-भावना है। वे मानव सृष्टि में व्याप्त दुःख, शोषण, अन्याय, अत्याचार, विषमता, पराधीनता आदि का अन्त चाहती है। हिम्मत ही संबल है, आग में उगी वे धूप में मुरझाने वाली नहीं है। अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को उन्होंने इन शब्दों में प्रस्तुत किया- "मैं स्वयं तक सीमित नहीं, मैं मात्र अपनी जाति समुदाय तक सीमित नहीं है। सम्पूर्ण विश्व मेरा है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर निवास करने वाला मानव समाज मेरा कुटुम्ब है। मेरा हितचिंतन सबके लिए है।"[१५]

निष्कर्ष:

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी की प्रमुख आत्मकथा में स्त्री जीवन के यथार्थ का अंकन किया गया जिसमें लेखिकाओं की पारिवारिक यथार्थ, सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक यथार्थ, आर्थिक यथार्थ बिन्दुओं पर विश्लेषण किया गया। समाज में अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं चाहे वह स्वयं की या फिर समाज की। कहीं पर मनोविश्लेषणात्मक ढंग से भी वर्णन

Copyright @ 2024 Author

ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-1, No.04, January: 2024

किया गया। गरीबी, महंगाई की समस्या, वैवाहिक जीवन का आर्थिक संकट, पति का आर्थिक शोषण, अन्धविश्वास, मनौतियाँ, छुआछूत आदि का विश्लेषण किया गया है। इन सभी लेखिकाओं की आत्मकथा हम सभी के लिए प्रेरणादायक है।

संदर्भ सूची :

१. कुसुम अंसल, ' जो कहा नहीं गया ' पृष्ठ ८४
२. वही, पृष्ठ ११८
३. वही, पृष्ठ ४८
४. मन्नू भण्डारी, एक कहानी यह भी, पृष्ठ १९
५. वही, पृष्ठ ८४
६. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, पृष्ठ ११
७. वही, पृष्ठ ४५
८. वही, पृष्ठ ८६
९. वही, पृष्ठ १७३
१०. चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, पिंजरे की मैना, पृष्ठ ६०
११. वही, पृष्ठ ४१५
१२. वही, पृष्ठ २८
१३. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नहीं है दिल मेरा, पृष्ठ ६९
१४. सुशीला टाकभौर, 'शिकंजे का दर्द, पृष्ठ ६७
१५. वही, पृष्ठ ३०४

Copyright @ 2024 Author